वैदिक व्याख्यान माला — अठारहवाँ व्याख्यान

# देवत्व प्राप्त करनेका

# अनुष्ठान

लेखक

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष-स्वाध्याय-मण्डल, साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार

स्वाध्याय-मंडल, पारडी ( जि. सूरत )

मूल्य छः आने

ॐ

# देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान

## मनुष्यका देव बनना है

शतपथ ब्राह्मणके प्रारंभमें कहा है कि "यद् देवा अकुर्वन् तत् करवाणि। (श. ब्राह्मण) 'जैसा देव करते हैं वैसा मैं करूंगा।' इसका अर्थ 'मैं देव बनूंगा' यह है। मनुष्यने देव बनना है। देव वह है कि जिसमें दिव्य गुण होते हैं, मनुष्यमें दिव्य गुण प्रकाशने लगे, तो मनुष्यका देव बन गया। इसके लिये मनुष्यको विशेष अनुष्ठान करना आवश्यक है। बिना अनुष्ठान किये मनुष्यकी उन्नति नहीं हो सकती।

## मनुष्यकी तीन श्रेणियां

मनुष्योंकी तीन श्रेणियां हैं "राक्षस, मनुष्य और देव" देव उच्च हैं, राक्षस नीचे हैं और मानव बीचमें हैं।

| | | |
|---|---|---|
| देव | दिव्यभाव | सूर |
| मनुष्य | मननस्वभाव | मानव |
| राक्षस | क्रूरभाव | असुर |

राक्षस क्रूर होते हैं, क्रूरता छोडकर मननशीलता धारण करनेसे वे मनुष्य श्रेणीमें पहुंचते हैं और दिव्य भाव प्राप्त होनेसे वे देव होते हैं। यह उच्चभावकी प्राप्ति अनुष्ठानसे हो सकती है।

## देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान

शतपथमें कहा है—

"त्रयं वा इदं न तृतीयमस्ति। सत्यं चैवानृतं च। सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमीति। तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति। स वै सत्यमेव वदेत्। एतद्ध वै देवा व्रतं चरन्ति यत् सत्यं, तस्मात्ते यशो यशो ह भवंति। य एवं विद्वान् सत्यं वदति। श. ब्रा. १।१।१।५

"यहां दो ही हैं, तीसरा नहीं है। सत्य और अनृत। सत्य ही देव है और अनृत मनुष्य है। यह मैं अनृतसे सत्यको प्राप्त करता हूं, इसका अर्थ मनुष्य भावसे मैं देवभावको प्राप्त करता हूं। जो यह अनुष्ठान करना चाहता है वह सत्य ही बोले। यह व्रत देव आचरणमें लाते हैं। सत्य पालनका ही यह व्रत है। इसलिये वे यशको प्राप्त करते हैं। वे यशस्वी होते हैं। जो यह जानकर सत्य बोलता है, वह देवत्व प्राप्त करता है।"

यह देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान है, जो सत्यका पालन करना है, वह देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान करना है। देवत्वकी प्राप्तिके लिये 'सत्य पालन' का व्रत धारण करना, यह पहिला और मुख्य व्रत है। उसके साथ अन्यान्य व्रत बहुत हैं। मुख्यतया देव शब्दमें जो 'दिव' धातु है, उसके अर्थोंसे कई अनुष्ठानोंका पता लग सकता है। वे अर्थ अब यहां देखिये—

## देवत्वके लक्षण

दिव्=क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु।

## पाणिनीय धातुपाठ

१ क्रीडा, खेल खेलना, मर्दानी खेल खेलनेमें कौशल प्राप्त करना;

२ विजिगीषा, विजय प्राप्त करनेकी इच्छा धारण करना; शत्रुका पराभव करना और अपने पक्षके लिये विजय प्राप्त करा देनेका प्रयत्न करना;

३ व्यवहार, व्यापार व्यवहार करनेमें प्रवीण होना,

४ द्युति, तेजस्वी होना, प्रकाशना, अपने तेजका विस्तार करना,

५ स्तुति, स्तुति करना, प्रशंसनीयकी प्रशंसा करना, ईश्वरकी स्तुति करना,

६ मोद, आनंदित रहना, प्रसन्नचित्त रहना, हास्यमुख रहना, कभी दुःखी कष्टी चित्तसे युक्त न होना,

७ मद, हर्ष और तृप्तिभावसे युक्त होना, सदा मनमें हर्ष और तृप्ति तथा संतोषका भाव रखना,

८ स्वप्न, निद्रापर प्रभुत्व रहना, निद्राको स्वाधीन रखना,

९ कान्ति, आकर्षकता शरीरमें रखनी, सौंदर्य, प्रेम, तेजस्विता और मधुरता अपनेमें रखना,

१० गति, फुर्ती, प्रगति, चपलता, कार्य करनेमें स्फूर्तिका होना, हलचल करनेकी शक्ति, प्रगति करनेका उत्साह अपनेमें होना।

देवत्वके ये दस लक्षण हैं। जिसके अन्दर ये होते हैं वह देव कहलाता है। इनमेंसे प्रायः सभी लक्षण मनुष्य अपने अन्दर ला सकता है और बढा भी सकता है। प्रत्येक मनुष्य प्रथम यह जाने कि ये देवत्वके गुण हैं और ये अपने अन्दर होने चाहिये। मनुष्य प्रयत्न करके इनको अपने अन्दर धारण करनेका प्रयत्न करे। इनके धारण करनेसे मनुष्य अधिक ऊंचा हो सकता है। जिस मनुष्यके अन्दर ये गुण वसते हैं, उस मनुष्यमें देवत्व वसता है, दिव्यभाव वसता है और यही दिव्यभाव मनुष्यको अपने अन्दर बढाना चाहिये। यही मनुष्यका विकास है। मनुष्य जन्म इसीलिये है।

मनुष्यका जन्म ही अपने अन्दर इस देवत्वकी उन्नति करनेके लिये हुआ है। मनुष्यने अपने जन्ममें अपने अन्दरसे आसुरभावको दूर करने और देवभावको अपने अन्दर बढानेका प्रयत्न करना चाहिये। अब देवोंके और लक्षण देखिये—

अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः।
सुपर्वाणः सुमनसस्त्रिदिवेशा दिवौकसः ॥७॥
आदितेया दिविषदो लेखा अदितिनन्दनाः।
आदित्या ऋभवोऽस्वप्ना अमर्त्या अमृतान्धसः ।८।
बर्हिर्मुखाः क्रतुभुजो गीर्वाणा दानवारयः।
वृन्दारका दैवतानि पुंसि वा देवताः स्त्रियाम् ॥९॥
अमर० १

१ ये नाम देवोंके हैं। पुल्लिंगमें 'देवः देवाः' स्त्रीलिंगमें 'देवताः वा देवी (देव्यः)' और नपुंसकलिंगमें 'दैवतानि, दैवतं' ऐसा कहा जाता है, तीनोंका अर्थ एक ही है। लिंगभेदके शब्द प्रयुक्त होनेसे वस्तुमें परिवर्तन नहीं होता। देवके लक्षण इससे पूर्व बताये हैं।

२ अ-मराः, अ-मर्त्याः, निर्जराः- ये तीन पद शरीरका वर्णन कर रहे हैं। अकालमृत्यु जिनको नहीं है और वृद्धावस्थामें भी जो जरारहितसे, युवा जैसे दीखते हैं। जो सूर्यादि देव हैं उनको मृत्यु और जरा नहीं है। परंतु जिस समय मानवी जातिके देवोंका वर्णन करनेके लिये ये 'अमराः, अमर्त्याः, निर्जराः' पद प्रयुक्त होते हैं, उस समय इनका अर्थ मर्यादित समझना योग्य है। अकालमृत्यु तथा जराको यावच्छक्य दूर रखना, यह देवोंके लक्षणोंमें एक लक्षण है।

३ विबुधाः विशेष ज्ञानी, विशेष रीतिसे विद्यासंपन्न, ज्ञान विज्ञानसे सुभूषित 'विद्वांसो हि देवाः' (श० प. ब्रा.) देव विद्वानोंको कहते हैं अथवा देव ज्ञानी होते हैं। 'भू देव' ब्राह्मणोंका नाम सुप्रसिद्ध है और ब्राह्मण विबुध अर्थात् ज्ञानी होते हैं। अर्थात् 'ज्ञान, विज्ञान' ये देवोंके लक्षण हैं।

४ लेखाः— लेखन कार्यमें निपुण, लिपि अर्थात् लेखन कला जाननेवाले। लेखन कार्य, चित्र कार्य जानना, सुन्दर अक्षर लिखना यह भी एक देवोंका लक्षण है। जो लोग मानते हैं कि भारतमें प्राचीन समयमें लेखनकला नहीं थी, वे इस पदका विशेष विचार करें। देवोंमें 'लेखाः' (लेखक) यह एक लेखकोंका वर्ग ही था, जो लेखकोंका धंदा करता था। और देव जाति आर्य जातिके पूर्व तथा समकालमें शासन करती थी। इससे देवजातिके पास लिपी थी, ऐसा सिद्ध होता है। अर्थात् आर्य जातिके पूर्व देव जातिके पास लेखन कला थी।

५ सु-मनसः= उत्तम मनवाले देव होते हैं। जो 'विबुध' हों, और जो 'लेखक' भी हों अर्थात् ग्रंथ लेखक भी हों, तो वे उत्तम मनवाले होनेकी संभावना है, इसमें संदेह नहीं है।

६ अ-स्वप्नाः= जो सुस्त नहीं हैं। जो आलसी नहीं हैं, जो अपने कर्तव्य करनेमें तत्पर रहते हैं, वे 'अ-स्वप्न' कहलाते हैं। देव होनेके लिये आलस छोडनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

७ गीर्वाणाः= (गीः) वाणी रूप (बाणाः) बाण शत्रुपर छोडनेवाले, अर्थात् वाणीसे शत्रुके अपसिद्धान्तका खंडन करनेवाले, शास्त्रार्थ महारथी। अपनी विद्वत्तासे शत्रु पक्षके मन्तव्यका खंडन करनेवाले। अथवा (गीः) स्तुतिका

( वाणाः ) सेवन करनेवाले, जिनकी सब लोग प्रशंसा गाते हैं, स्तुतिके लिये जो योग्य हैं।

८ ऋभवः, ऋभुवः= ( उरुभान्ति ) बहुत प्रकाशते हैं, तेजस्वी, कारीगर, ऋभु इन्द्रके लिये जो वज्र आदि शस्त्र बनाते हैं, रथ बनाते हैं। ऋभुओंका वर्णन ऐसा आया है-

य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी ॥ २ ॥
तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम्।
तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ३ ॥ ऋ० १।२०

'ऋभुओंने इन्द्रके लिये दो घोडे अच्छे सिखला कर दिये जो शब्दोंके इशारेसे चलते थे। अश्वि देवोंके लिये सुखदायक रथ बनाकर दिया और दुधारू गौ भी अधिक दूध देने योग्य बनवाकर दी।'

ये ऋभु कारीगर देव थे। नाना प्रकारकी कारीगिरी ये करते थे। जिस तरह देवोंमें ( लेखाः ) लेखक थे वैसे ही ( ऋभवः ) कारीगर भी थे।

९ वृन्दारकाः— ( प्रशस्तं वृन्दं येषां ते ) जिनका संघ प्रशंसा योग्य होता है। जिनमें संघशक्ति प्रशंसनीय होती है। जो संघटना करनेमें अत्यंत चतुर होते हैं। कारीगरोंकी संघटनाएं आज भी जगत्में हैं। देव विबुध थे, उत्तम मनवाले थे, उद्यमशील थे, कारीगर थे, इस कारण उनके प्रबल संघ होते होंगे इसमें संदेह नहीं है। यह 'वृन्दारक' पद उनकी संघशक्ति बता रहा है।

१० अमृतान्धसः ( अ-मृत-अन्धसः )— मरे हुए भोजनका नाम 'मृतान्धस्' है, प्रेतभोजन करनेवालोंका यह नाम है। मांस भोजन एक प्रकारका प्रेत भोजन ही है। जो प्रेतका भोजन नहीं करते उनको 'अ-मृत-अन्धसः' कहते हैं। 'अन्' प्राण व्यापारका नाम है, जीवनव्यवहारका यह नाम है। ( अन्+धस् ) प्राणका धारण जिससे होता है वह अन्न है यही 'अन्धस्' है। 'अन्नमय शरीर' है अर्थात् शरीरका जीवन अन्नसे रहता है। अन्न खानेसे प्राणीका शरीर जीवित रहता है। यह अन्न कैसा होना चाहिये इसका उत्तर 'अ-मृत-अन्धस्' इस पदने दिया। मृत अन्न नहीं होना चाहिये। मुर्देका अन्न न हो। वेदमें अन्नवाचक अनेक नाम हैं, उनमें मांस भोजनको बतानेवाला एक भी पद नहीं है। मांस भोजन तो मृत भोजन ही है।

११ क्रतुभुजः— यज्ञ करके जो अवशेष अन्न रहता है उस यज्ञशेष अन्नका भक्षण जो करते हैं, यज्ञमें देव, पितर और अतिथि इनका भोजन होनेपर जो यज्ञका प्रसाद-रूप शेष रहता है, वही अन्न खाना चाहिये। गीतामें कहा है—

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
गीता ४।३१
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः ॥
गीता ३।१३

'यज्ञशेष भक्षण करनेवाले सब पापोंसे मुक्त होते हैं और सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।' यही अर्थ 'क्रतुभुजः' पदसे प्रकट होता है।

१२ सुराः— ( सुष्ठु राजन्ते ) उत्तम रीतिसे प्रकाशते हैं। अपनी विद्यासे अपने शिल्पसे, अपनी मनःशक्तिसे जो उत्तम रीतिसे प्रकाशते हैं। जो तेजस्वी दीखते हैं।

१३ सुपर्वाणः— 'पर्व' नाम शरीरके संधिस्थानका है। घुटने, हात पांव के संधि ये जिनके निर्दोष होते हैं। जो आसनादि व्यायामों द्वारा अपने संधिस्थानोंको निर्दोष अवस्थामें रखते हैं। संधिस्थानोंमें संधिवात आदि रोग होते हैं, जिनके संधियोंमें कोई दोष नहीं होता वे जरा रहित होते हैं और वेही पूर्णायु होते हैं। संधिस्थान ही रोगका स्थान होता है, वह जिनका निर्दोष है वे नीरोग रहेंगे ही। 'सुपर्वाणः' का दूसरा अर्थ है जो उत्तम उत्सव करते हैं, जिनमें उत्सव करनेका उत्साह है, जो महा-पुरुषोंके उत्सव मनाते हैं।

१४ त्रिदशाः— जो तीन दशाओंमें रहते हैं। बाल्य, कौमार और यौवन ये तीन ही दशाएं जिनको होती हैं। तारुण्य प्राप्त होनेपर जो नित्य तरुण ही रहते हैं, वृद्ध, जीर्ण, क्षीण नहीं होते। जिनका रहन सहन उनको नित्य तरुण रखता है, क्षीण होने नहीं देता। यह उत्तम नीरोग रहनेका जीवन है। बाल्यके पश्चात् कौमार और उसके पश्चात् यौवन। यौवन प्राप्त होनेपर जो सदा तरुण जैसे ही रहते हैं। कभी जीर्ण नहीं होते। ऐसा जीवन इन देवोंने साध्य किया था।

१५ त्रिदिवेशाः, दिवौकसः, दिविषदः- ये नाम सूर्यादि देवोंके हैं कि जो देव द्युलोकमें ही रहते हैं। इनका मनुष्य वाचक अर्थ 'तेजस्वी स्थानमें रहनेवाले' इतना ही है। सुंदर उच्च और तेजस्वी स्थानमें रहनेवाले।

*

१६ आदितेयाः, अदितिनंदनाः, आदित्याः– ये नाम अदितिके पुत्र होनेका अर्थ बताते हैं। 'दिति' का अर्थ 'बंधन, नाश' है, 'अदिति' का अर्थ स्वातन्त्र्य 'अविनाश' है। जो अविनाशी है। अथवा जो स्वातंत्र्यप्रिय हैं। जो प्रकाशका फैलाव करते हैं। जो प्रकाशमार्गसे ही जाते हैं, जहां जाते हैं वहां प्रकाश फैलाते रहते हैं।

१७ बर्हिर्मुखाः— जो विशेष करके यज्ञ करते हैं। जिनका यज्ञ ही मुख है। जिनका जीवन यज्ञमय है।

१८ दानवारयः ( दानव-अरयः )— राक्षसोंके जो शत्रु हैं, राक्षसों, आसुरी वृत्तीवालोंके साथ जो विरोध करते हैं। दुष्टोंको जो शत्रु मानते हैं।

देवोंके २६ नामोंका भाव यहां दिया है। इनमें पूर्वोक्त १० अर्थ मिलाये जांय तो ये सब देवोंके लक्षण होते हैं। इन लक्षणोंसे जो युक्त होते हैं वे देव हैं। इस तरह देव नाम उत्तम श्रेष्ठ दिव्य मनुष्योंका है यह सिद्ध होता है। ऐसे जो देव होंगे, उनका सदा सत्कार ही होता रहेगा। इस तरह देव बनना मनुष्योंके लिये योग्य है। देव बननेका अर्थ श्रेष्ठ बनना है। सर्वोत्तम बनना ही देव बनना है। मनुष्योंको राक्षसी भावका त्याग करना और दिव्य भावका अपने अन्दर संवर्धन करना आवश्यक है।

## देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान

अब हम देखते हैं कि यह देवभाव मनुष्य अपने अन्दर किस तरह अनुष्ठानसे बढा सकते हैं—

को देवयन्तमश्नवत् जनम्। ऋ० १।४०।७

'देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यकी कौन भला बराबरी कर सकता है?' अर्थात् देव प्राप्तिका अनुष्ठान करनेवालेको घेरा जाय, उसका पराभव करे ऐसा कोई नहीं है। यहां 'देवयन्' पद है। 'देव अपनेको प्राप्त हो ऐसी इच्छा करनेवाला' यह इसका अर्थ है। किसी मनुष्यको देव प्राप्त हुआ तो देव प्राप्त होते ही वह देव ही बनता है। लोहा अग्निको प्राप्त होते ही लोहा अग्निरूप बनता है, लकडी अग्निरूप बनी तो वह लकडी अग्नि ही बनती है। देवको प्राप्त करनेका अर्थ देव बनना है, देवके गुणधर्म अपने अन्दर प्रकट होनेका अर्थ ही देवकी प्राप्ति है। देव किसीको प्राप्त हुआ तो वह उपासक देव जैसा बनता है। किसीके घर राजा आकर बसने लगा तो वह घर राजमहल जैसा बनता है, फिर किसीके पास देव आकर बसने लगा, किसीको देव प्राप्त हुआ, तो उसकी सब दीनता दूर होती है और वह देव जैसा बनता है। इसीलिये वेदमें देव प्राप्तिके अनुष्ठान कहे हैं और समझाया है कि मनुष्य देवत्व प्राप्तिके अनुष्ठान करे और उन्नत हो जाय।

इस हेतुसे इस मंत्रमें कहा है कि देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान करनेवालेका पराभव कोई कर नहीं सकता। इतनी उसकी शक्ति बढती है।

यहां 'देवयन्, देवयु' ये मंत्रमें पद आते हैं। ये पद बडे मननीय हैं। 'देवयन् देवं आत्मने इच्छन्' देवकी प्राप्ति अपने लिये हो ऐसी इच्छा करनेवाला, देवका संबंध मेरे साथ हो ऐसी इच्छा करनेवाला और इसकी सिद्धिके लिये यत्न या अनुष्ठान करनेवाला। 'देवयु' देवके साथ स्वयं संयुक्त होनेवाला। ये इन पदोंके अर्थ हैं। देवमें जो शक्ति है वह अपनेमें आजाय और उस शक्तिसे मैं शक्तिशाली बनूं यह इच्छा यहां मुख्य है। वेदके मंत्रमें भी यही भाव है। देखिये—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि, बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि, सहोऽसि सहो मयि धेहि। वा. य. १९।९

'तू तेज, वीर्य, बल, ओज, मन्यु और सहन शक्तियोंसे युक्त है, इसलिये मुझमें इन शक्तियोंकी स्थापना कर।' यह प्रार्थना बता रही है कि यहाँ देवत्वकी प्राप्ति होनेका अर्थ क्या है। देवोंमें जो शक्ति है वह शक्ति हमें प्राप्त हो और हम उस शक्तिसे शक्तिवान बनें। यही अनुष्ठान है। यही देव बनना है।

## देवोंकी सहायता

जो साधक देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, उनको देव सहायता करते हैं—

प्राचैः देवास प्रणयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते।
ऋ० १।८३।२; अथर्व २०।२५।२

'जो ( ब्रह्मप्रियं देवयुं ) परमात्मापर श्रद्धा रखनेवाला और देवत्व अपने अन्दर बढानेकी इच्छा करनेवाला साधक होता है, उसकी देव ( जोषयन्ते ) प्रीतिसे सहायता करते हैं और उसको वे सरल मार्गसे आगे बढाते हैं।' अर्थात्

उनकी उन्नति करनेके लिये हर प्रकारकी वे सहायता करते हैं। केवल साधकके अन्दर ईश्वरके विषयमें प्रेमशक्ति चाहिये और मनसे देवत्व प्राप्तिकी सच्ची इच्छा होनी चाहिये' इसका परिणाम ऐसा होता है—

ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो
देवयन्निदेवयन्तमभ्यसत्।
सुप्रावीरिद् वनवत् पृत्सु दुष्टरं
यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम्॥ ऋ० २।२६।१

सीधा आचरण करनेवाला हिंसक शत्रुका पराभव कर सकता है, ( देवयद् ) देवत्व प्राप्त करनेवाला देवत्वप्राप्ति की इच्छा न करनेवाले नास्तिकका पराभव करता है, ( सु प्रावीः ) जो वीर उत्तम प्रकारसे चारों ओरसे सुरक्षित रहता है वही ( दुस्तरं ) बडे शक्तिमान शत्रुका भी ( पृत्सु ) युद्धोंमें पराभव करता है और जो यज्ञकर्ता है वह यज्ञ न करनेवालोंके भोगोंको प्राप्त करता है।

इसमें कहा है कि जो देवत्वकी प्राप्ति करनेकी इच्छा करता है, वह देवकी भक्ति न करनेवालेका पराभव करता है। उस नास्तिकको पीछे हटाकर स्वयं आगे बढता है। देवत्वको प्राप्त करनेवालेका ऐसा लाभ होता है तथा—

प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः। ऋ० ५।४८।२

' देवोंके साथ अपना संबंध जोडनेवाला मनुष्य अपूर्व शक्तियोंसे युक्त होता है और दुःखोंसे पार होता है।' देवोंके साथ रहनेसे ही अपने अन्दर देवोंके गुण आते हैं और उन गुणोंकी अपने अन्दर वृद्धि होनेसे ही मनुष्यकी उन्नति हो जाती है। और देखिये—

## गौओंको पास रखना

आ देवयुं भजति गोमति व्रजे। ऋ० ५।३४।५

' देवत्व प्राप्त करनेवाला अथवा देवोंके साथ रहनेवाला गौओंके बाडेमें रहता है।' अर्थात् उसके पास बहुतसी गौवें रहती हैं, वह धनधान्यसंपन्न होता है। तथा—

अग्ने स क्षेषद् ऋतपा ऋतेजा उरु ज्योतिः
नशते देवयुः ते॥ ऋ० ६।३।१

' वह देवोंके साथ रहनेवाला सत्यका पालन करनेवाला सत्यकी पालनाके लिये ही जीवन लगानेवाला ( क्षेषत् ) दीर्घायु प्राप्त करता है, और उपास्य देवकी विशेष ज्योति भी प्राप्त करता है।' अर्थात् वह देवताके समान तेजस्वी और जरारहित होता है।

यहां देवोंके साथ रहनेका अर्थ दिव्यगुणयुक्त सत्पुरुषोंके साथ रहना है। जो ऐसे सज्जनों, विबुधोंके साथ रहता है, वह विशेष तेज प्राप्त करता है, इसमें संदेह नहीं है। देवत्व प्राप्त करनेवालेकी उन्नति किस तरह होती है वह देखिये—

## देवत्व प्राप्त करनेवालेकी उन्नति

इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वं मुषायति। भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्
अभिन्ने खिल्ये निदधाति देवयुम्॥
ऋ० ६।२८।२; अथर्व० ४।२१।२

' इन्द्र यज्ञ करनेवाले और प्रसन्न करनेवालेको धन देता है, निःसंदेह धन देता रहता है, कभी उसका धन कम नहीं होने देता। वारंवार इसके धनको बढाता ही जाता है और देवत्वकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करनेवालेको सुरक्षित स्थानमें रख देता है।'

दैवी गुणोंको अपने अन्दर धारण करनेवालोंकी इस तरह उन्नति होती है, उनको धन मिलता है और संरक्षण भी प्राप्त होता है। यह बात देखिये—

यत् देवयन्तं अवथः शचीभिः। ऋ० ७।६९।४

' देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान करनेवालेका संरक्षण प्रभु अपनी संपूर्ण शक्तियोंसे करता रहता है।'

देवके साथ रहनेसे देवसे सब प्रकारका संरक्षण प्राप्त होता है। जैसा कोई मनुष्य राजाके साथ रहेगा, तो राजा उसका संरक्षण करता है, उसी तरह देवत्व प्राप्त करनेवाला देवके साथ रहता है, इसलिये देवको उसका संरक्षण करना आवश्यक ही होता है।

## देवत्व प्राप्तिका सरलमार्ग

एहि मनुर्देवयुर्यज्ञकामोऽरंकृत्या तमसि क्षेष्यग्ने।
सुगान् पथः कृणुहि देवयानान् वह हव्यानि
सुमनस्यमानः ऋ० १०।५१।५

' आओ, यहां देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला मनुष्य यज्ञ करनेकी इच्छा कर रहा है। परन्तु हे अग्ने! तुम तो अलंकार धारण करके अंधेरेमें ही बैठे हो। देवोंके पास

जानेके मार्ग हमारे लिये सुगम करो, और प्रसन्न अन्तः-करणसे अन्नोंको ले चलो।'

देवत्व प्राप्तिके अनुष्ठान सुगम हैं, आसुरी प्रवृत्तिको दूर करना और दैवी वृत्तिको धारण करना, ऐसा करनेसे ही ये अनुष्ठानके मार्ग सुगम हो जाते हैं। जो देवत्वकी प्राप्ति करना चाहता है वह यज्ञ करे अर्थात् ( १ ) पूजनीयोंका सत्कार करे, ( २ ) लोगोंकी संघटना करे और ( ३ ) दीनोंकी सहायता करे। यज्ञके ये तीन अंग हैं। देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान करनेवाला इस यज्ञको करे। यह देवत्व प्राप्तिका मुख्य अनुष्ठान है। इस तरह यज्ञ द्वारा मानव समाजरूपी परमेश्वरकी, ज्ञानी-शूर-व्यापारी-शिल्पी ये जिसके सिर बाहू पेट और पांव हैं उसकी यज्ञ द्वारा सेवा करनेसे यज्ञकर्ताको देवत्व प्राप्त होता है।

## धातु शुद्धि

नयत अग्ने यज्ञपतिं सुधातुं यज्ञपतिं देवयुम्।

वा० य० १।१२

'इस यज्ञके कर्ता, देवत्वको प्राप्त करनेवाले उत्तम धारणा शक्तिवालेको आगे बढाओ।' यहां देवत्वको अपने अन्दर बढानेवाला आगे बढता जाता है, ऐसा सूचित किया है। ऐसे अनेक वर्णन इसके पूर्व भी आचुके हैं। इस मंत्रमें 'सुधातु' पद मननीय है। जिसके शरीरके सप्त धातु अर्थात् रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र ये सप्त धातु शुद्ध हैं, वह 'सु-धातु' कहलाता है। जिसके शरीरमें ये सप्त धातु शुद्ध रहते हैं, वह ओजस्वी, मनस्वी, तेजस्वी और दीर्घजीवी तथा नीरोग होता है। देवत्व प्राप्तिके लिये अपने शरीरके सप्त धातु निर्दोष रखनेके अनुष्ठानका बहुत ही महत्व है। खानपान आचार व्यवहारकी परिशुद्धतासे ये धातु शुद्ध रहते हैं। देवोंका शरीर निर्दोष रहता है, शरीरको पसीनेकी दुर्गंध नहीं आती, एक प्रकारका उत्तम प्रसन्नता दर्शक सुवाससा आता है। यह है देव शरीरका लक्षण, वह यहां 'सु-धातु' पदसे बताया है। दूध, दही, घी, मधु, घी १ भाग, मधु २ भाग, शक्कर २ भाग, दही ४ भाग और दूध ८ भाग, केला ८ भाग इनका मिश्रण खानेसे पसीनेकी दुर्गन्ध हट जाती है, इसी तरह दुर्गन्धवाले पदार्थ भी नहीं खाने चाहिये। प्याज, लसन आदि पदार्थ दुर्गन्धवाले होते हैं, इनके खानेसे पसीनेकी दुर्गन्ध बढती है। श्वास उच्छ्वासको भी दुर्गन्ध नहीं आनी चाहिये। यह सब पेटकी पाचनशक्ति ठीक रही और योग्य खानपान होता रहा, तो होनेवाला है। शरीरमें 'सु-धातु' किस तरह रह सकते हैं, इसका वर्णन आर्य वैद्यकमें बहुत अच्छी तरह दिया है। जो पाठक देखेंगे, तो उनको पता लगेगा, कि इस विषयमें अपना कर्तव्य क्या है।

यहांतक देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान करनेके लिये व्यक्तिशः क्या करना चाहिये इसका विचार हुआ। अब सामुदायिक रीतिसे देवत्व प्राप्त करनेवाले क्या करें इसका विचार करना है। मनुष्यके जीवनके ये दो अंग हैं, एक वैयक्तिक और दूसरा सामुदायिक। दोनोंकी उत्तमतासे मनुष्य पुरुषोत्तम बन सकता है। यहांतक अकेला क्या करे इसका विचार किया, अब संघशः क्या करना चाहिये इसका विचार करेंगे।

## देवत्वप्राप्तिका सांघिक अनुष्ठान

देवत्व प्राप्तिके लिये सामुदायिक अनुष्ठान विशेष रीतिसे करनेकी आवश्यकता है। उसके कुछ निर्देश अब हम वेदके मंत्रोंमें देखेंगे—

देवयन्तो यथा मतिं अच्छा विदद्वसुं गिरः।
महामनूषत श्रुतम्॥ ऋ० १।६।६; अथर्व० २०।७०।२

'देवत्व प्राप्त करनेवाले अपने सुविचार ( महां श्रुतं ) बडे प्रसिद्ध और ( विदद्वसुं मतिं ) धन प्राप्तिके मार्गको अपनी बुद्धिसे जाननेवाले वीरके पास सीधे पहुंचा देते हैं।' देवत्व प्राप्त करनेवाले बडे विद्वान् और धन प्राप्तिके सन्मार्गको जाननेवाले ज्ञानी वीरकी ही प्रशंसा करते हैं।

'विदद्-वसु'= धन प्राप्त करनेका उत्तम साधन जाननेवाला, 'मति'= बुद्धि, बुद्धिमान, 'श्रुतं'= ज्ञान, श्रुतिका ज्ञान; देवत्व प्राप्त करनेवाले ऐसे बुद्धिवानोंके साथ रहते हैं। क्योंकि देवत्व प्राप्तिके लिये ये गुण आवश्यक हैं तथा—

## सामुदायिक उपासना

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्। ... ईमहे।

'जो देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं उन नागरिक प्रजाजनोंके लिये जो सामर्थ्यवान् उपास्य है उसीकी हम सब मिलकर उपासना करते हैं;

यहां कहा है कि नागरिकोंकी सामुदायिक उपासना चलती है और उसमें देवत्व प्राप्त करनेके इच्छुक तत्काल शामिल होते हैं। 'यह्व' का अर्थ 'सामर्थ्यवान्, समर्थ, शक्तिमान्' है। प्रभुकी सामुदायिक उपासनामें प्रविष्ट होना देवत्व प्राप्तिके लिये आवश्यक है।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।
ऋ० १।४०।१; वा० य० ३४।५०

'हे ज्ञानके स्वामिन्! उठो और हमें सहायता करो। हम देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छासे तुम्हारी स्तुति करते हैं।' यहां ज्ञान प्राप्त करना, ज्ञानीकी उपासना करना, देवत्व प्राप्तिके लिये सामुदायिक (मिलकर) उपासना करना आवश्यक बताया है। ज्ञानीसे ज्ञानकी प्राप्ति होनेके विना-देवत्व प्राप्त नहीं हो सकता। तथा—

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुः मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः। तं मेधेषु प्रथमं देवयतीर्विशः उपब्रुवते दस्समारीः॥ ऋ० १।७७।३

'वह प्रभु (क्रतुः) कर्मोंका कर्ता है, वह (मर्यः) मानवोंका हितकारी है, (साधुः) वह सद्भावनावाला अथवा सद्भावयुक्त है, (मित्रः न) वह मित्र जैसा सहायक है, वह (अद्भुतस्य रथीः भूत्) अद्भुत धनको रथमें रखकर लानेवाला है, वह (मेधेषु प्रथमं तं) वह यज्ञोंमें प्रथम वंदनीय है, तथा (दस्मं) वह दर्शनीय है। (आरीः देवयतीः विशः) मिलकर प्रगति करनेवाली और देवत्वप्राप्त करनेवाली प्रजा उस प्रभुकी उपासना करती है।'

यहां प्रभुके गुण प्रथम वर्णन किये हैं, कर्मोंको उत्तम रीतिसे करनेवाला, जनताका हित करनेवाला, सद्भावना-युक्त, मित्रवत् सहायक और अपूर्व धन देनेवाला प्रभु है। देवत्व प्राप्त करनेका अर्थ ये गुण अपनेमें लाना और बढाना है। कुशलतासे कर्मोंको करना, जनताका हित करना, सद्भावना अपनेमें बढाना, मित्रके समान व्यवहार करना, अपूर्व धन प्राप्त करना, ये प्रभुके गुण मनुष्य अपने अन्दर धारण करें।

देवत्व प्राप्त करनेवाली प्रजा स्वयं कैसा आचरण करे यह भी इसी मंत्रमें बताया है- प्रजा (आरीः) अपनी प्रगति करनेके लिये तत्पर हो, (देवयतीः) देवके प्रभुके गुण अपने अन्दर धारण करनेके लिये तत्पर हो। प्रजामें ये गुण होंगे तो ही वे प्रजाजन अपने अन्दर देवत्व प्राप्त कर सकते हैं।

देवके-प्रभुके-और दो गुण हैं, वह (दस्म) दर्शनीय है और (प्रथमं) सबमें पहिला है। देवत्व प्राप्त करनेवाले स्वयं सुन्दर बनें और प्रथम स्थानमें विराजें। ऐसे लोग देवत्व प्राप्त कर सकते हैं। देवत्व प्राप्त करनेके इच्छुकोंको यह मंत्र बडा मार्गदर्शक है। पाठक इसका अधिक मनन करें। तथा—

यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्। ऋ० १।११५।२; अथर्व० २०।१०७।१५

'(देवयन्तः नरः) देवत्व प्राप्त करनेवाले मनुष्य (युगानि वितन्वतः) दम्पतिके जोडे, पतिपत्नीके जोडे बनाते हैं, विवाह करके पतिपत्नी रूप जोडा बनाकर साथ साथ रहते हैं, गृहस्थी जीवन व्यतीत करते हैं और (भद्राय) अपना कल्याण होनेके लिये (भद्रं) कल्याणकारक कर्म करते हैं।

यहां ऐसा कहा है कि देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले लोग गृहस्थी बनकर, अपनी पत्नीके साथ रहें और मिलकर अपने कल्याण होनेके लिये कल्याण करनेवाले कर्म करें। देवत्व प्राप्तिके विरुद्ध गृहस्थधर्म नहीं है, इतना ही नहीं, परंतु देवत्व प्राप्तिके लिये उसकी आवश्यकता भी है।

## ज्ञानियोंका मार्ग

देवत्व प्राप्त करनेवालोंको ज्ञानियोंके मार्गसे जाना चाहिये, इस विषयमें यह मंत्र देखिये—

प्रत्यग्निः उषसः चेकितानोऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम्। पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निरावः॥ ऋ० ३।५।१

'(उषसः चेकितानः) उषःकालोंमें करने योग्य कर्मोंको जाननेवाला (विप्रः) ज्ञानी और (कवीनां पदवीः) ज्ञानियोंके मार्गपरसे जानेवाला (प्रति अबोधि) जागता है। यह (पृथु-पाजाः) बहुत तेजस्वी (देवयद्भिः समिद्धः) देवत्व प्राप्त करनेवालोंके द्वारा प्रदीप्त किया हुआ (तमसः द्वारा) अन्धकारके द्वारोंको (अप आवः) बंद करता है।' अन्धकारको हटाता है और प्रकाश करता है।

उषःकालमें उठकर अपने कर्तव्य कर्मोंको करना, ज्ञान प्राप्त करना, ज्ञानियोंके मार्गोंपरसे चलना; अन्धकारको

तथा अज्ञानको दूर करना, सदा जाग्रत रहना ये देवत्वके लक्षण हैं, इनको अपने अन्दर बढाना देवत्व प्राप्तिके लिये आवश्यक है। और देखिये–

## बलवर्धक प्रकाशका ध्यान

विशो मानुषीः देवयन्तीः प्रयस्वतीः ईळते शुक्रं आर्चिः। ऋ० ३।६।३

' मानवी प्रजा देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेके लिये प्रयास करती हुई स्वच्छ बलवर्धक प्रकाशके गुणगान गाती है। ' बल बढानेवाले प्रकाशके गुण वर्णन करती है और उन गुणोंको अपने अन्दर धारण करती है। प्रकाश अन्धकार दूर करता है, मार्ग दर्शाता है, शत्रुको दूर करता है, ये गुण देवत्व चाहनेवाले अपने अन्दर धारण करें। और यह मन्त्र क्या कहता है, देखिये–

युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥ ऋ० ३।८।४

' ज्ञानी तरुण उत्तम वस्त्र परिधान करके सभामें आता है, वह आते ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है, मनसे देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले, ध्यान धारणा करनेवाले ज्ञानी कवि उसी ज्ञानी तरुणको उच्च स्थानपर बिठलाते हैं। ' प्रमुख स्थानपर बिठलाते हैं।

यदि कोई विद्वान् सभामें आया तो उसका संमान करना ज्ञानी लोगोंका कर्तव्य है। देवत्व प्राप्त करनेका यह एक लक्षण है। श्रेष्ठ पुरुषको श्रेष्ठ स्थानपर बिठलाना देवत्वका लक्षण है। योग्य विद्वानका संमान करना और उनसे द्वेष या मत्सर न करना यह दैवीभावसे होता है। देखिये—

## जीवनकी शुद्धि

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः॥ ऋ० ४।२।१७; अथर्व० १८।३।२२

' ( सुकर्माणः ) उत्तम कर्म करनेवाले, ( सुरुचः ) उत्तम तेजस्वी दिव्य विबुध ( देवयन्तः ) अपनेमें देवत्व बढानेवाले अपने ( जनिमा ) जीवनोंको ( अयः न धमन्तः ) सोना चांदी लोहा आदिको जैसा भट्टीमें डालकर तपाकर शुद्ध करते हैं, उस तरह अपने जीवनव्यवहारको परिशुद्ध करते हैं। '

सुनार सोने चांदीको शुद्ध पवित्र और निर्दोष बनानेके लिये अग्निमें डालते हैं और धोंकनीसे वायुके प्रवाह द्वारा अग्निको अधिक प्रदीप्त करते और उस अग्निसे उस सोने चांदीको शुद्ध करते हैं। यहां आत्माकी अग्नि है, श्वासोच्छ्वासकी धोंकनीसे वह अग्नि प्रज्वलित की जाती है और इस अग्निमें मनुष्यका जीवन परिशुद्ध होता है। इस तरह जीवात्माका तेज तप करनेसे बढता ही जाता है।

यहां परिशुद्ध होनेका अनुष्ठान बताया है। प्राणायामसे यह तपोऽग्नि प्रज्वलित होती है। इससे मानवी जीवन परिशुद्ध होता है। यही देवत्वकी प्राप्तिके लिये आवश्यक है। तथा—

त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम्। द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम्॥ ऋ० ४।११।५

'हे अमर अग्ने! ( देवयन्तः मर्ताः ) देवत्वकी प्राप्ति करनेकी इछा करनेवाले मनुष्य ( मन्द्रजिह्वं प्रथमं देवं ) तुझ प्रिय बोलनेवाले पहिले दिव्य विबुध ( द्वेषो युतं ) शत्रुओंका नाश करनेवाले ( दमूनसं ) दुष्टोंका दमन करनेवाले ( अमूरं गृहपतिं ) ज्ञानी गृहपालककी ( धीभिः आ विवासन्ति ) बुद्धिपूर्वक सेवा करते हैं। 'देवत्वकी प्राप्ति करनेके इच्छुक किसकी सेवा करें, किसका अनुकरण करें? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसका उत्तर इस मंत्रने दिया है। वह इस तरह है। जो ( द्वेषः युतं ) शत्रुओंका समूल नाश करनेवाले, ( दमूनसं ) दुष्टोंका दमन करनेवाले, ( मन्द्र-जिह्व ) जिसकी भाषामें मिठास है, ( अमूरं गृहपतिं ) जिसमें मूढता नहीं है और अपने घरका, अपने राष्ट्रका योग्य रीतिसे पालन करता है ऐसा जो ( प्रथमं देवं ) प्रथम स्थानमें बैठने योग्य विबुध है उसके साथ रहकर ( धीभिः आ विवासन्ति ) बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले शुभकर्मोंसे उसकी परिचर्या करें। अर्थात् उसके साथ रहें और बुद्धिपूर्वक शुभ कर्म करते रहें। यहाँ जो गुण कहे हैं वे शुभ गुण देवत्व प्राप्तिके लिये अत्यंत आवश्यक हैं। ये गुण मनुष्य अपनेमें धारण करें। और ये निर्देश देखिये—

तं त्वा वयं नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः॥ ऋ० ६।१।७

' हम सब ( सु-म्न-आयवः ) उत्तम मनसे जिनकी आयु

पवित्र हुई है, जो उत्तम विचार धारण करते हैं ऐसे (देवयन्तः) देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले, हे अग्ने! तुम्हारे पास ही हम आते हैं।' यहां मनमें सुविचार धारण करना देवत्वकी प्राप्तिके लिये आवश्यक है ऐसा स्पष्ट रीतिसे कहा है। तथा और देखिये—

अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः। सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥ ऋ० ७।१०।३

(देवयन्तीः मतयः) देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली मनुष्योंकी बुद्धियाँ और (द्रविणं भिक्षमाणाः गिरः) धनकी इच्छा करनेवाली वाणियां (सु-सं-दृशं सु-प्रतीकं) उत्तम दर्शनीय और सुरूप (सु-अञ्चं) उत्तम प्रगति करनेवाले (मनुष्याणां अरतिं) मानवोंके नेताके पास (अच्छा यन्ति) सीधी जाती हैं।

## नेताके गुण

नेता कैसा हो? इस प्रश्नके उत्तरमें यह मंत्र कहता है कि नेता (सुसंदृशं) सुंदर दर्शनीय (सुप्रतीकं) रमणीय दीखनेवाला (सु-अञ्चं) उत्तम प्रगतिशील व्यवहार करनेवाला और मानवोंको (अरतिं) आगे ले जानेवाला हो। यह नेता देवत्वके गुणोंसे युक्त होता है। इसलिये देवत्व प्राप्त करनेके इच्छुक इसके पास जाते हैं, इसके साथ रहते हैं और इन गुणोंको अपने अन्दर धारण करते हैं। देवत्व प्राप्तिका यह अनुष्ठान है। देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान करनेवाले अपना अनुष्ठान होनेपर ऐसा अनुभव करते हैं—

अतारिष्म तमसस्पारं अस्य प्रतिस्तोमं देवयन्तो दधानाः ॥ ऋ० ७।७३।१

'हम इस अन्धकारके पार हो गये हैं और देवत्वकी इच्छा करते हुए हम स्तोत्र और शुभकर्मका धारण करते हैं।' प्रभुके स्तोत्रमें शुभगुणोंका संकीर्तन होता है, इससे किन शुभगुणोंका धारण मनुष्यने करना चाहिये इसका ज्ञान होता है। यह ज्ञान होनेसे शुभ कर्मोंका भी ज्ञान होता है। इस ज्ञानकी प्राप्ति होते ही मनुष्यका अज्ञान दूर हो जाता है। यही अन्धकारको पार करना है। इस समयतक कितने मंत्र दिये हैं जिनमें प्रभुके शुभगुणोंका वर्णन है, और उस वर्णनसे शुभ कर्मोंका भी ज्ञान हो जाता है। यह ज्ञान होना ही अन्धकारको पार करना है। वही बात इस मंत्रमें कही है।

## बलकी वृद्धि

देवत्व प्राप्तिसे बलकी वृद्धि होती है। इस विषयमें एक मंत्रमें कहा है—

अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्राहतं।

ऋ० ७।९३।५

'देवत्वको प्राप्त करनेवाले मिलकर युद्धमें देवत्व प्राप्त न करनेवाले शत्रुको परास्त करते हैं।' देवत्व प्राप्त करनेसे संघटना शक्ति बढती है, सामर्थ्य भी बढता है, इसलिये इस सामर्थ्यसे युक्त हुए पुरुष अपने शत्रुका पराभव करते हैं। देवत्व प्राप्तिके अनुष्ठानसे बलकी वृद्धि होनेका अनुभव इस तरह मनुष्योंको प्राप्त होता है।

## पवित्रता होती है।

देवत्व प्राप्त करनेवाले पवित्र होते जाते हैं, ऐसा एक मंत्र कहता है—

सुदानवः मर्मृज्यन्ते देवयवः। ऋ० ८।१०३।७

'उत्तम दान देनेवाले देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छासे अपनी पवित्रता करते हैं।' अर्थात् वे शुद्ध होते हैं। अपनी पवित्रता करनेसे अपना बल बढ जाता है। और भी देखिये—

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते।

ऋ० १०।१७।७; अथर्व. १८।१।४१; १८।४।४५

न्यध्वरे असदन् देवयन्तीः। ऋ० १०।३०।१५

'देवत्वकी प्राप्ति करनेवाले विद्यादेवीकी उपासना करते हैं।' अर्थात् विद्याको प्राप्त करते हैं। तथा 'वे देवत्व प्राप्त करनेवाले हिंसारहित (अ-ध्वरे) कर्म करनेके लिये इकट्ठे होकर बैठते हैं।'

इन मन्त्रोंमें कहा है कि देवत्व प्राप्त करनेवाले विद्याको प्राप्त करके विद्वान् होते हैं और वे ऐसा कर्म करते हैं कि जिसमें हिंसा नहीं होती। विद्याको प्राप्त करना और हिंसारहित कर्म करना यह देवत्व प्राप्तिके लिये आवश्यक है। और भी कहा है—

द्युमान् द्युमत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेषु दोदयो देवयत्सु ॥ ऋ० १०।६९।७

"तेजस्वियोंमें तेजस्वी मनुष्योंद्वारा सुशोभित होनेवाला देवत्व प्राप्त करनेवाले उत्तम मित्रोंमें प्रकाशित होता है।" यहां कहा है कि देवत्व प्राप्त करनेवाले लोग परस्पर मित्र

बनकर रहते हैं और उनके अन्दर वह प्रभु प्रकाशित होता है कि जो तेजस्वियोंमें तेजस्वी है और जो स्वयं प्रकाशी है और जिसका वर्णन ज्ञानी नेता सदा करते हैं।

देवत्व प्राप्त करनेवालोंके अन्दर जो गुण होते हैं वे इस मन्त्रमें दिये हैं—

त्वं नृभिः दक्षिणावद्भिः अग्ने सुमित्रेभिः इध्यसे देवयद्भिः। ऋ० १०।६९।८

( देवयद्भिः ) देवत्व प्राप्त करनेवाले (सुमित्रेभिः) उत्तम मित्र होते हैं, परस्परकी उत्तम सहायता करते हैं, परस्पर सहकार्य करते हैं, ( नृभिः ) वे नेतृत्व करते हैं, अनुयायियोंको शुद्ध मार्गसे ले जाते हैं और ( दक्षिणावद्भिः ) दक्षिणा देते हैं, दान देते हैं। दक्षतासे कार्य करते हैं। मित्रभाव, नेतृत्व, दाक्षिण्य ये गुण देवत्व प्राप्त करनेवालोंमें होने चाहिये। जिन मनुष्योंको यह विदित होगा, वे इन गुणोंको अपने अन्दर बढायेंगे और देवत्व प्राप्त करेंगे।

अथर्व वेदके देवत्व प्राप्त करनेके विषयमें कई मन्त्र तो इससे पूर्व दिये हैं। अब कुछ विशेष महत्त्वकी बात कहनेवाले दो तीन मंत्र यहां देते हैं-

इडैवास्माँ अनुवस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः॥ अथर्व. ७।२८।१

' ( इडा ) प्रशंसनीय विद्या ( व्रतेन ) व्रतके साथ हमारे साथ रहे। इसके साथ रहकर देवत्व प्राप्त करनेवाले ( पुनते ) पुनीत होते हैं। ' मनुष्योंके साथ उत्तम व्रत और उत्तम विद्या रहे और मनुष्य उनसे परिशुद्ध होवे और अपने अन्दर देवत्व प्राप्त करे।

## देवत्व प्राप्त करनेवालोंका राष्ट्र

ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुः त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः। प्रजामेका जिन्वति ऊर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम्॥ अथर्व० ८।९।१३

' सत्यके मार्गसे तीन बल मनुष्यको प्राप्त होते हैं। ये तीन धर्मके बल अपने संपूर्ण वीर्यके साथ ही आते हैं। इनमेंसे एक प्रजाका पालन करता है, दूसरा अन्नको देता है अथवा सामर्थ्य बढाता है और तीसरा देवत्वको प्राप्त करनेवालोंके राष्ट्रका रक्षण करता है। '

यहां एक महत्त्वकी बात ध्यानमें आगयी है कि ' देवयूनां राष्ट्रं रक्षति ' देवत्व प्राप्त करनेवालोंका राष्ट्र सुरक्षित रहता है। ऋतके मार्गसे देवत्व प्राप्त करनेवाले राष्ट्र होते हैं। अर्थात् देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान जैसा वैयक्तिक रीतिसे होता है, वैसा ही राष्ट्र भी देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान करता है और राष्ट्रका राष्ट्र देवत्व प्राप्त करता है और वह देवोंका राष्ट्र होता है। हमने इससे पूर्व व्यक्ति देवत्व प्राप्त करती है यह देखा, अनेक सज्जनोंका संघ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान करता है यह भी देखा, अब यहां ( देवयूनां राष्ट्रं ) देवत्व प्राप्त करनेवालोंका राष्ट्र है और वह देव बननेका यत्न करता है। अर्थात् यहां राष्ट्र शासक देवत्व प्राप्त करनेके इच्छुक होने चाहिये, तब वे वैसा उत्तम राज्य शासन करेंगे, जिससे सब लोगोंको उसका लाभ मिलेगा। देवत्वके जो गुण हैं वे गुण जनतामें बढें, ऐसा राष्ट्रका शासन चलाना चाहिये और ऐसा चलाया भी जा सकता है, यह एक नया आशाका किरण इस वेदमंत्रने हमें दिया है। एक मनुष्य देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान कर सकता है, कुछ थोडे मनुष्य भी मिलकर देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान कर सकते हैं। यहांतक तो देवत्व प्राप्तिके अनुष्ठानकी शक्यता हमें भी प्रतीत होती है। पर राष्ट्रका राष्ट्र देवत्व प्राप्तिके प्रयत्न करेगा, ऐसा एकदम दीखता नहीं। इस समय इतनी अधोगति हुई है। जो वैदिक समयमें राष्ट्रके व्यवहारमें था, वह सत्य था इस विषयमें भी हमें आज संदेह प्रतीत हो रहा है !!!

इस मंत्रमें ' देवयूनां राष्ट्रं ' ये पद स्पष्ट बता रहे हैं कि देवत्व प्राप्त करनेवालोंका राष्ट्र होता है और वह देवत्व प्राप्त करता है। वहांके लोग आचार व्यवहारसे कितने ऊंचे होंगे इसकी कल्पना पाठक कर सकते हैं।

जिस राष्ट्रमें ( ऋतस्य पंथां अनु आगुः ) ऋतके मार्गसे चलनेवाले लोग होंगे और अनृतकी ओर कभी नहीं झुकेंगे उन्हीं लोगोंका राष्ट्र यहां वर्णन किया है।

हम कब इस अवस्थातक पहुंचेंगे इसका पता लगाना आज कठिन है। क्योंकि आज ऋतका मार्ग ही रहा नहीं है ! स्थान स्थानपर अनृत भरा है। इसलिये देवत्व प्राप्त करनेवालोंका हमारा राष्ट्र बनाना आज कठिन है। आज इस मंत्रने हमें अपनी उच्चताकी राष्ट्रीय अवस्थाका ज्ञान करा दिया है। छांदोग्य उपनिषदमें कहा है कि—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ॥
छां० उ०

'हमारे राज्यमें चोर, कृपण, मद्यपी, अविद्वान्, स्वैरी, स्वैरिणी तथा अग्निहोत्र न करनेवाला नहीं है।' ऐसा राज्य जब होगा तब उस राज्यके लोग देवत्वको प्राप्त हुए होंगे। वैसा राज्य ही पूर्वोक्त अथर्व मंत्रमें कहा 'देवयूनां राष्ट्रं' है। ऐसे राज्यमें रहनेका भाग्य ऋषियोंको था। अब हमें आसुर प्रवृत्तीके लोगोंके राष्ट्रमें रहनेका अवसर आगया है। अस्तु। हमारी राष्ट्रीय उन्नति यहांतक होनी चाहिये।

अब हमने यहांतक जो वेदमंत्र देखे हैं, उनसे देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान जो सिद्ध होता है, उसको क्रमपूर्वक अब पुनः बतायेंगे। यहां व्यक्तिशः तथा संघशः जो अनुष्ठान करनेका है उसको पृथक् पृथक् बतायेंगे और इससे ही राष्ट्रने कौनसा अनुष्ठान किस तरह करना चाहिये यह भी आप ही आप सिद्ध हो जायगा।

वास्तवमें व्यक्ति और संघके लिये गुण एक ही हैं। जो गुण व्यक्तिने धारण करने हैं वे ही संघने तथा राष्ट्रने अपने आचरणमें लाने हैं। व्यक्तिके लिये देवत्वके गुण पृथक् और समूहके लिये पृथक् ऐसी बात नहीं है। दोनों स्थानोंमें एक ही गुण हैं। इसलिये हम यहां सामान्यतः देवत्वके गुणोंका विचार करेंगे और देवत्वके गुणोंका निश्चय करेंगे। फिर वे व्यक्ति धारण करे, संघ धारण करे अथवा राष्ट्र धारण करे।

## देवताके गुण

देवत्व प्राप्त करनेका विचार वेदका मुख्य विचार है। वेद मंत्रोंके हजारों सूक्तोंमें देवत्वके गुणोंका वर्णन किया है। प्रत्येक सूक्तमें एक या अनेक देवताएं होती हैं और उस देव या देवताओंका वर्णन उस सूक्तमें होता है। यह उपासक देखें और वह अपने जीवनमें ढालनेका यत्न करें। इसीलिये वह वर्णन होता है। देवताकी स्तुति देवताके लिये नहीं है, परन्तु उपासकके लिये है। देवता तो स्वतः पूर्ण है, उसमें न्यूनाधिकता होनी नहीं है। जो होना है और बनना है, वह उपासकका बनना है। उपासकने देवत्व प्राप्त करना है, देव जैसा बनना है। इसलिये उपासकको देवत्वके गुण मंत्रोंमें देखकर उन गुणोंको अपनेमें धारण करना चाहिये। वेद मंत्र इसीलिये हैं।

इस लेखमें हमने देवत्वके गुणोंका विशेष विचार किया नहीं है, परंतु देवत्व प्राप्त करनेवाला साधक क्या करता है यही बताया है और आगे भी यही देखना है। देवोंके गुणोंका विचार करके साधक किस तरह अनुष्ठान करे इसका विचार स्वतंत्र निबंधमें होगा। यहां केवल साधक वा उपासक कैसा आचार व्यवहार करे और अपनेमें किस तरह देवत्वके गुण बढावे इतना ही देखना है।

अयो न···जनिमा धमन्तः। ऋ० ४।२।१७

सोने चांदी या लोहा इस धातुको शुद्ध करनेवाले जिस तरह उस धातुको अग्निमें डालकर धोंकनीसे अग्निमें तपाते जाते हैं, उसी तरह अपने जीवनको तपाना चाहिये। यही अपने जन्मको पवित्र करना है। इस तरह अपने तपसे जो पवित्र बनेंगे वेही देवत्व प्राप्त कर सकते हैं।

इस तपका विचार मनुष्यको करना आवश्यक है।

## ऋतपालन

देवत्व प्राप्त करनेके अनुष्ठानमें ऋतपालन, सत्यपालनका महत्त्व विशेष है। सत्य और ऋतमें थोडा भेद है। 'ऋत' का अर्थ 'योग्य, सरल, सीधा' जो है वह ऋत है और सत्य वह है कि जो जैसा है। किसी मनुष्यका मुख टेढा है, तो उसको 'टेढे मुखवाला' कहना सत्य तो है, परंतु वैसा कहना योग्य है वा नहीं इसका विचार 'ऋत' में होता है। इस कारण देवत्व प्राप्तिके अनुष्ठानमें 'ऋत-पालन' का महत्त्व विशेष है।

ऋतेजा ऋतपाः देवयुः उरुः ज्योतिः नशतो
स क्षेषत्। ऋ० ६।३।१

'ऋतका पालन करनेवाला, जिसका जीवन ही ऋत पालनके लिये है। ऐसा मनुष्य देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करके विशेष ज्योति प्राप्त करता है और वह इस भूमिपर रहता है।'

(ऋतपा) ऋतपालनके लिये ही जो जन्मा है, जन्ममें नियमसे जो ऋतका पालन करता है। ये गुण देवत्व बढाने वाले हैं। ऋतका पालन न करनेवाले मनुष्यका व्यवहारमें क्या होता है इसकी कल्पना पाठक कर सकते हैं। वह तो व्यवहारमें भी भ्रष्ट होता है और उसको देवत्व प्राप्त होना

तो दूर ही है। मनुष्य सहज ही से राक्षस असुर दानव बन सकता है, देव बनना ही कष्टसे होनेवाला है।

तेजः वीर्यं बलं ओजः मन्युः सहोऽसि।

वा. य. १९।९

यह देवके गुण हैं। हे प्रभो! तू इन गुणोंसे युक्त हो, तुम्हारे ये स्वाभाविक गुण हैं, मैं तुम्हारे साथ रहकर, तथा तुम्हें प्राप्त करके इन गुणोंको अपने अन्दर बढाना चाहता हूं। ईश्वरके अथवा देवताके ऐसे गुणोंका गान इसलिये करना है कि उपासकको, इन शुभ गुणोंका पता लगे और उसके अन्दर ये गुण अपनेमें धारण करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हो। जितने वेदके अन्दर मन्त्र हैं उनमें जो ईश-गुणका वर्णन है वह इसीलिये है।

कई लोग समझते हैं कि ईशस्तुति ईशकी संतुष्टि या प्रसन्नता करनेके लिये है। भक्त लोग ऐसा समझें। पर यह बात सत्य नहीं है। ईश्वरकी स्तुति भक्तकी उन्नति करनेके लिये मार्गदर्शन करनेवाली है। इसके कई उदाहरण देखिये।

इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया। ये वर्णन वेदके अनेक मंत्रोंमें है। इसमें शत्रुका नाश करनेके कारण इन्द्रका गौरव है। पर यह सब कथा मानवोंको मार्गदर्शन करनेके लिये है। मानवोंको इस कथासे यह बोध मिलता है कि वे अपने राष्ट्रके शत्रुको परास्त करें, विनष्ट करें अथवा उनको दूर करें। राष्ट्रको शत्रुरहित करनेका उपदेश यहां है।

भगवान् रामचन्द्रने रावणका वध किया। इसमें रामचन्द्रजीका गौरव निःसंदेह है, पर भगवान् रामचन्द्रजीको इससे अब क्या लाभ होनेवाला है? उसने अपना कर्तव्य किया, उससे उस समय जो बनना था वह बना। अब वह कथा हमें उपदेश देती है और कहती है कि तुम भी ऐसा करो और राष्ट्रके शत्रुको हटा दो। राष्ट्रको शत्रुरहित करो।

ईश्वरका प्रत्येक गुण इस तरह मानवको बोध देता है कि हे मानव तू इस गुणको धारण कर और देवत्व प्राप्त कर, ऊंचा उठ, दैवी भावनासे युक्त हो। गीतामें ब्राह्मीस्थितिका जो वर्णन है वह भी यह भाव बताता है। ब्रह्मकी जो स्थिति है वह ब्राह्मीस्थिति है। ब्रह्म जैसा बननेसे ब्राह्मी-स्थिति प्राप्त होती है। ब्रह्मके गुण अपने अन्दर धारण करनेसे ब्राह्मीस्थिति प्राप्त होती है। ब्रह्मके कुछ गुण गीतामें कहे हैं। उनको अपने अन्दर धारण करनेसे ब्राह्मी अवस्था प्राप्त होती है। सबका आशय यही है कि साधकको उठानेके लिये यह सब प्रयत्न है। ईशके प्रत्येक स्तोत्रसे ऐसा ही लाभ होता है। केवल पाठमात्रसे कल्याण नहीं होगा, यह बात इस विवरणसे पाठकोंके ध्यानमें आजायगी। भगवान रामचन्द्रजीका चरित्र पढनेसे रामचन्द्रके समान गुण अपनेमें धारण करनेकी स्फूर्ति होनी चाहिये। पश्चात् प्रयत्न करके उन गुणोंका धारण करना चाहिये। केवल रामचन्द्रजीका चरित्र सहस्रोंवार पढा जाय और उनके समान एकपत्नी, एकवचनी, एकबाणी बननेका यत्न न हो जाय, तो कोई लाभ नहीं है। इसी तरह वेदके सूक्तों और मंत्रोंका पाठ करने मात्रसे कुछ विशेष लाभ नहीं होगा, परंतु उनमें कहे गुणोंका धारण करनेसे ही जो हो सकता है वह लाभ होगा।

## ज्ञानकी प्राप्ति

वेदमंत्रसे तथा वेदके सूक्तोंके पाठसे ज्ञान होता है कि यह देव ऐसे गुणोंसे युक्त हैं, ये गुण श्रेष्ठ हैं, क्या मेरे अन्दर ये गुण हैं? यदि हैं तो वे कैसे बढ सकेंगे? इसका विचार करना चाहिये। यदि नहीं है तो उनका अपने अन्दर धारण किस रीतिसे हो सकता है इसका मनन करना चाहिये। मंत्रको या सूक्तको रटनेसे कोई लाभ नहीं है। मंत्रमें कहा है--

ब्रह्मप्रियं देवशुं देवासः प्रणयन्ति।

ऋ० १।८३।२

'देवत्व प्राप्त करनेका इच्छुक ( ब्रह्म-प्रियः ) ज्ञानपर प्रेम करनेवाला चाहिये। जो ऐसा होगा उसीको सब देव आगे बढाते हैं।' मंत्रमें जो ज्ञान रहता है उस ज्ञानपर प्रेम करनेवाला भक्त होना चाहिये। साधक मंत्रमें विद्यमान ज्ञान देखे, उसको अपनावे और वैसा स्वयं बने।

ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति। मुण्डक ३।२।९

इसका अर्थ यही है कि 'देवं ज्ञात्वा देवो भवति' देवको जाननेसे देव होता है। गुणोंको धारण करनेसे यह होता है। ज्ञानप्रिय मनुष्यको देव आगे बढाते हैं ऐसा जो ऊपर कहा है वह इसी रीतिसे अनुभवमें आ सकता है।

देवयन् अदेवयन्तं अभ्यसेत् ऋ० २।२६।१

'देवत्व प्राप्त करनेवाला देवत्व न प्राप्त करनेवालेको परास्त करता है।' उसको पीछे रखकर स्वयं आगे बढता

है। इसके लिये इसी मंत्रमें उदाहरण दिया है वह यह है-

सुप्रावीः पृत्सु दुष्टरं वनवत्। ऋ० २।२६।१

'सुरक्षित किलेमें रहनेवाला युद्धमें पराजय करनेमें कठिन शत्रुको भी परास्त करता है। जो देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान करता है वह किलेमें बैठे वीरके समान सुरक्षित होता है, इसलिये वह शत्रुको परास्त करता है। अर्थात् देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान अपना ही बल बढाता है।

देवयुः मनुः, देवयानान् पथः सुगान् कृणुहि।

ऋ० १०।५१।५

'देवत्व प्राप्त करनेवाला यह मनुष्य है। इसके लिये देवत्व प्राप्त करनेके मार्ग सुखसे जाने योग्य करो।' यह आवश्यक ही है। देवत्व प्राप्त करनेके अनुष्ठान थोडे कष्ट देनेवाले तो होंगे ही, परंतु वारंवार अनुष्ठान करते रहनेसे वेही कष्टप्रद अनुष्ठान सुगम होसकते हैं।

बालक प्रथम दिन अक्षर लिखता है तो उसको कितने कष्ट होते हैं? परंतु आगे वही बालक सहजहीसे लिखता है। यह तो वारंवार करनेसे प्रवणिता प्राप्त होती है। अर्थात् मार्ग सुगम होते जाते हैं। वारंवार प्रयत्न करनेसे यह सुगमता स्वयं आ जाती है। इसी तरह हरएक कार्यमें कुशलता प्राप्त होती है।

देवयन्तं शचीभिः अवथः। ऋ० ७।६९।४

'देवत्व प्राप्त करनेवालेका संरक्षण देव अनेक शक्तियोंसे करते हैं।' देवताओंसे अनेक प्रकारकी शक्ति प्राप्त होती है। देवत्व प्राप्त करनेवालेको दैवी शक्ति किस तरह प्राप्त होती है यह किसीको मालूम नहीं होता है। पर दैवी शक्तियोंकी अनुकूलता इसको होती जाती है यह सत्य है। यही बात इस मंत्रमें कही है। 'शची' इन्द्रकी शक्ति है। इन्द्रके पास अनंत शक्तियाँ हैं। इन शक्तियोंको बतानेके लिये इस मंत्रमें 'शचीभिः' पद बहुवचनमें है। ये अनंत शक्तियां देवत्व प्राप्त करनेवालेको सहायता करती हैं। इसलिये देवत्व प्राप्त करनेका इच्छुक न डरे, न उदासीन हो, न निरुत्साहित हो, परंतु अपना देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान करता चला जाय। ऐसा करनेसे वे दैवी शक्तियां उसके पास आने लगती हैं और उसके अन्दर प्रकट होने लगती हैं। दिन प्रतिदिन उसका सामर्थ्य बढता जाता है और यह सामर्थ्यवान् हो गया है ऐसा उसको प्रतीत होता है और इसके सामर्थ्यका अनुभव दूसरोंको भी आता है।

## देवके गुण

देवके गुण किस तरह मंत्रमें वर्णन किये होते हैं और उपासक उससे किस रीतिसे लाभ उठा सकता है यह अब देखिये—

स हि क्रतुः मर्यः साधुः मित्रः अद्भुतस्य रथीः।
दस्मः मेधेषु प्रथमः॥ ऋ० १।७७।३

वह ईश्वर (क्रतुः) शुभ कर्म करता है, मैं वैसा शुभ कर्म, यज्ञरूप कर्म, करूंगा। वह (मर्यः) मनुष्योंका हित करता है वैसा मैं मानवोंका हित करता रहूंगा, मानवोंके दुःख दूर करता रहूंगा। वह (साधुः) सत्प्रवृत्तिवाला है मैं साधु बनूंगा। वह (मित्रः) मित्रवत् आचरण करता है, मैं वैसा ही सबके साथ मित्रवत् आचरण करता रहूंगा। वह (दस्मः) दर्शनीय है, मैं दर्शनीय बनूंगा, वह (मेधेषु प्रथमः) यज्ञोंमें प्रथम सत्कार करने योग्य है, मैं श्रेष्ठ बन कर मैं भी प्रथम सत्कार करने योग्य बनूंगा, वह (अद्भुतस्य रथीः) अद्भुत सामर्थ्यको लाता है, अपूर्व धन लाता है, वैसा मैं भी विशेष सामर्थ्य प्राप्त करके अपूर्व धनको प्राप्त करूंगा।

ईश्वरके गुण देखकर अपने अन्दर वे गुण किस रीतिसे आ सकते हैं इसका मनन इस रीतिसे करना चाहिये। यह मनन इस रीतिसे किया जा सकता है। वेदमंत्रके मननकी यह रीति है। यही उपासना है, यही वेदमंत्रके उपदेशको अपने अन्दर ढालना है। वेदधर्मसे मनुष्यका उद्धार इसी रीतिसे हो सकता है। जिस समय मनुष्यमें इस मंत्रके गुण आजायंगे, उस समय मनुष्य कितना ऊंचा उठेगा, इसका विचार पाठक कर सकते हैं। यह पद्धति पाठक स्वयं विचार करके सहज ही समझ सकते हैं। यदि पाठकोंको इस तरह मंत्रको अपने अन्दर ढालनेका अनुष्ठान किस रीतिसे करना है। यह समझमें आ जायगा, तो वे किसी मंत्रको लेकर वे अपनी उन्नति स्वयं कर सकते हैं। मंत्रको अपने जीवनमें ढालना चाहिये। पाठक इस विधिको समझनेका यत्न करें।

देवयन्तीः प्रयस्वतीः मानुषीः विशः शुक्रं अर्चिः
ईळते। ऋ० ३।६।३

' देवत्व प्राप्त करनेवाली प्रयत्नशीला मानवी प्रजा बल वर्धक ज्योतिकी स्तुति करती है। ' बलवर्धक तेजके गुण गानेसे अपने अन्दर वे ही गुण बढानेकी इच्छा होती है और इससे बल बढानेका अनुष्ठान शुरू होता है। ' शुक्र अर्चिः ' यह अपना ध्येय है, ' बलवर्धक ज्योति ' प्राप्त करना अपना जीवनोद्देश्य है। मानव देह प्राप्त करके इसी ज्योतिको प्राप्त करना चाहिये।

सुकर्माणः सुरुचः देवयन्तः। ऋ० ४।२।१७

' देवत्व प्राप्त करनेवाले तेजस्वी लोग उत्तम कर्म करते हैं।' यहां ' सुकर्माणः ' यह पद है अच्छे कर्म करनेकी सूचना यहां मिलती है। उत्तमोत्तम कर्म करने चाहिये। मनुष्य कर्मोंके करनेसे ही उन्नत होते हैं। शुभ कर्म करनेसे और कभी अशुभ कर्म न करनेसे मनुष्य उन्नत होता है।

मनुष्यका नाम ही ' क्रतु ' है, इसने १०० वर्ष जीवित रहना है और १०० वर्षोंमें सौ क्रतु करने हैं। इस तरह यह शतक्रतु होता है। यही इन्द्रत्व प्राप्ति है। सौ क्रतु करनेसे इन्द्र पद मिलता है, यह जो पुराणोंमें कथाएँ हैं, इनका यह अर्थ है। और प्रभुके गुण देखिये—

मन्द्रजिह्वं द्वेषो युतं दमूनसं अमूरं गृहपतिम्।
ऋ० ४।११।५

' ईश्वर (मन्द्र-जिह्वः) आनन्दवर्धक भाषण करनेवाला है, मैं भी ऐसा भाषण करूंगा कि जिसको सुननेसे सुननेवालोंको आनन्द होता रहेगा। ईश्वर ( द्वेषो युतः ) शत्रुओं का नाश करनेवाला है वैसा मैं भी शत्रुओंको दूर करूंगा। ईश्वर ( दमूनस् ) वैरियोंका दमन करनेवाला है, वैसा मैं भी वैरियोंका दमन करूंगा, इतनी शक्ति मैं प्राप्त करूंगा कि जिससे शत्रु स्वयं दूर होंगे। ईश्वर ( अ-मूरः ) अमूढ अर्थात् ज्ञानी है, मैं भी ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानी बनूंगा। ईश्वर ( गृह-पतिः ) अपने विश्वरूपी घरका स्वामी है, वैसा मैं भी अपने घरका, अपने ग्रामका और अपने राष्ट्ररूपी घरका योग्य रीतिसे पालन करूंगा। इस रीतिसे ईश्वरका प्रत्येक विशेषण देखकर उसको अपने जीवनमें ढालनेका विचार करना चाहिये। प्रत्येक मंत्रका इस तरह विचार करके साधकको बोध लेना योग्य है।

द्युमत्सु द्युमान् सुमित्रियेषु देवयत्सु दीदयः।
ऋ० १०।६९।७

' ईश्वर ( द्युमत्सु द्युमान् ) तेजस्वियोंमें तेजस्वी हैं, वैसा मैं तेजस्वियोंमें तेजस्वी बनूंगा, श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ, ज्ञानियोंमें ज्ञानी बनूंगा। उत्तम मित्रोंसे भी उत्तम मित्र और उत्तम दाता बनूंगा।

देवयन्तः व्रतेन पुनन्ते। ऋ० ७।२८।१

' देवत्व प्राप्त करनेवाले व्रतपालन करके पवित्र होते हैं। ' व्रतपालन मुख्य है। पूर्वस्थानमें जो बताया है वह व्रतपालन है। ईश्वर ज्ञानी है मैं व्रत धारण करता हूं कि मैं भी ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानी बनूंगा। इस तरह वेदमंत्रोंसे मानवी उन्नतिके व्रत पालन करनेके लिये मिलें। प्रत्येक मंत्रसे ये व्रत ध्यानमें आते हैं। इनका पालन जितना होगा, उतना मनुष्यका तेज बढता जायगा। स्तुतिके प्रायः प्रत्येक मंत्रमें ये व्रत हैं, केवल वह स्तुति अपने जीवनमें ढालनेकी दृष्टिसे उसका मनन करना चाहिये। यह कोई कठिन बात है ऐसी नहीं है, परंतु साधकने इस दृष्टिसे इस व्रतका विचार करना चाहिये।

देवयन्तः विदद्वसुं महां श्रुतं अनूषत। ऋ० १।६१।६

' देवत्व प्राप्त करनेवाले धनप्राप्त करनेके मार्गको जानने वाले बडे विद्वानकी सेवा करते हैं। ' उनके साथ रहते हैं। बडे विद्वानके साथ रहनेसे उनको ज्ञान प्राप्त होता है और उस ज्ञानसे नाना प्रकारके धन प्राप्त करनेके मार्ग विदित हो जाते हैं। ' वसु ' का अर्थ केवल रुपये आने पाई ही नहीं है। जिससे मनुष्यका निवास सुखसे होता है वह वसु है। यह वसु जिसको प्राप्त होता है, वह यहां सुखसे रह सकता है। वैसा न भी मिले, परंतु अन्य साधन मिले, तो मनुष्य यहां सुखसे रह सकता है। इसलिये मनुष्यको श्रुत ( ज्ञान ) और वसु ( धन ) प्राप्त करना योग्य है।

यहां कोई पाठक प्रश्न पूछ सकते हैं कि देवत्व प्राप्त होनेके लिये श्रुत ( ज्ञान ) तो चाहिये यह ध्यानमें आ सकता है, परंतु वसु ( निवास साधक धन ) किस लिये चाहिये? इसका उत्तर यह है कि जिसका यहां इस पृथ्वीपर सुखसे निवास ही न होगा, वह देवत्व किस तरह प्राप्त कर सकेगा? जो यहां सुखसे रह सकता है, वही यथायोग्य अनुष्ठान कर सकता है। इसलिये यहां सुखसे निवास होना भी देवत्व प्राप्तिका एक मुख्य साधन है इसमें संदेह नहीं है। इसी उद्देश्यसे कहा है-

## गृहस्थीका अनुष्ठान

देवयन्तः नरः युगानि भद्राय भद्रं वितन्वते।
ऋ० १।११५।२

'देवत्व प्राप्त करनेवाले साधक ( युगानि ) पति-पत्नीका जोड़ा तैयार करते हैं, विवाहित होते हैं और कल्याण प्राप्त करनेके लिये कल्याण करनेवाला कर्म करते हैं। यहां 'युगानि वितन्वते' कहा है। पति-पत्नीके जोड़े तैयार करते हैं। अर्थात् गृहस्थाश्रम स्वीकार करके यहां निवास करते हैं। यही यहां सुखसे रहना है। अर्थात् गृहस्थ बन कर यहां सुखसे रहना और देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान करना है। देवत्व प्राप्तिके अनुष्ठानके लिये गृहका त्याग करनेकी आवश्यकता नहीं है। इतना ही यहां कहना है। बहुतसे लोग ऐसा समझते हैं कि प्रत्येक अनुष्ठानके लिये गृहत्यागरूपी वैराग्यकी आवश्यकता है। वास्तवमें ऐसा नहीं है।

सब वैदिक ऋषि गृहस्थी थे। वैदिक यज्ञ पत्नीके बिना नहीं होता। छांदोग्य उपनिषदमें जहां धर्मस्कंध कहे हैं वहां ब्रह्मचर्य २४ वर्षोंका गृहस्थाश्रम ३६ वर्षोंका और वानप्रस्थाश्रम ४८ वर्षोंका मिलकर १०८ वर्षोंकी मर्यादा तीन आश्रमोंकी बतायी है। इसमें बालपनके ८ वर्ष मिलाये जांयगे तो ११६ वर्ष होते हैं। ११६ वे वर्ष वानप्रस्थ आश्रम समाप्त होता है। यहांतक अर्थात् ११६ वर्षकी आयु होनेतक गृहत्याग या संन्यास लेनेका विचार भी कोई करता नहीं है। यह है वैदिक देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान। यह सब गृहमें रहकर अपने बाल बच्चोंमें रहकर अपने परिवारके साथ रहकर ही करना है। इसलिये वैदिक समयमें कोई ऋषि गृहत्याग करते नहीं थे। संन्यासकी जो प्रथा आज चली है वह बुद्धोत्तर कालकी प्रथा है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ ही वैदिक कालके पुरुषार्थके और जनताका सुख बढानेवाले आश्रम थे। इसलिये कहा है कि—

देवयुं गोमति व्रजे आभजाति। ऋ० ५।३४।५

'देवत्व प्राप्त करनेवाला साधक गौओंके बाडेमें रहता है।' अर्थात् उसके घरमें बहुत गौवें रहती हैं। उसका परिवार गौका दूध, दही, मक्खन, घी खाता है और आनन्दसे रहता है। यह वर्णन बताता है कि देवत्व प्राप्त करनेका अर्थ इस जगत्में आनन्दसे उत्तम अवस्थामें रहना है। इसीलिये कहा है—

देवयूनां राष्ट्रं जिन्वति।
एका प्रजां जिन्वति
एका ऊर्जं रक्षति। ऋ० ८।९।१३

'देवत्व प्राप्त करनेवालोंके राष्ट्रका रक्षण होता है, एक प्रजाका रक्षण करती है, दूसरी प्रजाकी शक्तिका रक्षण करती है।' और ये सब शक्तियां देवत्व प्राप्त करनेवालेके पास रहती है। यहां देवत्व प्राप्त करनेवालोंका राष्ट्र सुरक्षित रहता है, विकसित होता है, ऐसा कहा है। यह भी पृथ्वीपरके सुराज्यकी व्यवस्था है।

यहां स्पष्ट हुआ कि देवत्व प्राप्त करनेवालोंको अपना वैयक्तिक सुधार करना होता है। इस सुधारमें ज्ञानविज्ञान, शारीरिक बल, बुद्धिकी शक्ति, मनका सामर्थ्य प्राप्त करना होता है। इसी तरह इनको कुटुंबका स्वास्थ्य रखना होता है, पति पत्नी इकट्ठे रहें और कल्याण प्राप्त करें ऐसे उद्योग देवत्व प्राप्त करनेमें करने होते हैं। देवोंमें भी पत्नीवाले देव बहुत हैं, क्वचित कोई देव पत्नीरहित हैं। फिर देवत्व प्राप्त करनेका अर्थ संन्यास लेना किस तरह हो सकता है? कुटुंबका संरक्षण देवत्वके अनुष्ठानमें आता है। इसके पश्चात् इससे भी अधिक विस्तृत राष्ट्रका क्षेत्र है। वह भी इस अनुष्ठानमें संमिलित है। देवत्व प्राप्त करनेवालोंका राष्ट्र है और वह सुरक्षित होता है। इतनी शक्ति उसमें रहती है। अथर्व वेदमें 'देवानां अष्टाचक्रा नवद्वारा पूः अयोध्या॥ ( अथर्व १०।२।३१ ), 'जिसके तटपर आठ चक्र शत्रुके नाश करनेके लिये लगाये हैं, जिसकी दिवारमें नौ द्वार हैं ऐसी यह अयोध्या नगरी देवोंकी नगरी है।' देवत्व प्राप्त करनेवालोंके पास भी यही आदर्श नगरी है। देवत्व प्राप्त करनेवाले इससे दूसरा क्या सोच सकते हैं? जैसा देव करते हैं वैसा ही ये करेंगे।

जैसी देवोंकी नगरी होगी, वैसीही ये अपनी नगरी बना देंगे। यह इनकी नगरी 'अयोध्या' होगी। अर्थात् शत्रुसे छिन्नभिन्न न होनेवाली यह नगरी होगी। सब शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित यह होगी। कोई शत्रु इसपर आक्रमण ही नहीं कर सकेगा।

## ऊंचा उठना है

इससे पाठकोंको पता लगेगा कि देवत्व प्राप्त करनेवाले वैयक्तिक, कौटुंबिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्योंके

करनेमें पीछे नहीं रहेंगे। देवत्व प्राप्त करना कंगाल बनना नहीं है, भिक्षु बनना भी नहीं है, परंतु सुंदर उच्च श्रेणीका श्रेष्ठ नागरिक बनना है। देवत्व मनुष्योंको ऊंचा उठाता है, श्रेष्ठ श्रेणीमें ले जाता है। अभ्युदयके उच्च स्थानपर पहुंचाता है।

सुवासाः श्रेयान् युवा भवति। ऋ० ३।८।४

'उत्तम कपडे पहननेवाला युवा तरुण यशस्वी हो' यह देवत्व है। 'देवयन्तः तं उन्नयन्ति' ( ऋ० ३।८।४ ) देवत्व प्राप्त करनेवाले ऐसे पुरुषको ऊपर उठाते हैं। यह देखनेसे देवत्व प्राप्तिसे मनुष्यकी उन्नति निःसंदेह होती है यह बात स्पष्ट होती। नागरिक जीवनका त्याग इसमें नहीं है, परंतु श्रेष्ठ श्रेणीके नागरिक जीवनका विकास यहां अभिप्रेत है।

लोग अच्छे कपडे ( सुवासाः ) पहने, वस्त्रालंकार धारण करें, सुन्दर बनें यह देवत्वमें होता है। सदाचारका सच्चा श्रेष्ठ ध्येय, अर्थात् पवित्र व्यवहार यहां अभीष्ट है। सब प्रकारका सच्चा अभ्युदय यहां इस देवत्व प्राप्तिके अनुष्ठानसे सिद्ध होता है।

देवयुभिः विदथे अदेवयुं सत्रा हतं।

ऋ० ७।९२।५

'देवत्व प्राप्त करनेवाले युद्धमें देवत्व न प्राप्त करनेवालोंका वध करते हैं।' यह राष्ट्रीय शक्तिका विकास स्पष्ट है। अपना संगठन करना, शत्रुको परास्त करना, यह सब इसमें आगया है। देवत्व प्राप्तिमें शत्रुको परास्त करनेका भी गुण आ जाता है। देव असुरोंको स्वयं परास्त करते हैं इसी तरह देवत्व प्राप्त करनेवाले भी करते हैं। देवत्व प्राप्त करना यह—

कवीनां पदवीः विप्रः पृथुपाजाः। ऋ० ३।५।१

'कवियोंका मार्ग है, यह बहुत समर्थ बनना है, यह ज्ञानी बनना है।' यहां निर्बलताका किसी तरह कोई संबंध नहीं है। यह प्रकाशका मार्ग है, इसीलिये कहा है कि—

अतारिष्म तमसस्पारं अस्य। ऋ० ७।७३।७

यहां देवत्व प्राप्त करनेसे हम अज्ञानान्धकारके परे प्रकाशके स्थानपर पहुंचे हैं। देवत्व प्राप्त करनेसे हम अन्धेरेको दूर करके प्रकाशके स्थानपर पहुंचे हैं। देवत्व प्राप्त होनेसे उनको प्रकाशमें आनेका आनंद होता है।

इस स्थानपर अन्यान्य देवत्वकी बातोंका भी विचार करना योग्य है पाठक वह विचार वेदमंत्रोंको देखकर करते रहें। अस्तु। वैदिक अनुष्ठानोंमें यह देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान विशेष महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है। यह अनुष्ठान प्रत्यक्ष लाभ देनेवाला और प्रत्यक्ष सुधार करनेवाला है।

पाठक इसका विचार करें और वेदमंत्रको अपने जीवनमें ढालनेका यत्न करके अपने अन्दर देवत्वका प्रकाश जितना अधिक हो सकता है उतना करें।